अनुसन्धान प्रवाह Anusandhan Pravah
(An Open Access, Peer Reviewed, Multidisciplinary, Bilingual, E-Journal)
ISSN: 3108-1541
Vol.2, Issue 1,Year 2025, pp 79-89
URL : https://journal.sskhannagirlsdc.ac.in/
सदनलाल सांवलदास खन्ना महिला महाविद्यालय
स्वर्ण जयन्ती वर्ष
2024-2025

पृथ्वीराज रासो में अभिव्यक्त स्त्री-जीवन

डॉ. सुमन मौर्या
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांश:

रासो साहित्य सामंती व्यवस्था और पितृसत्तात्मक समाज का था, जिसमें स्त्रियों को शिक्षा और स्वतंत्रता का सीमित अधिकार था। शिक्षा का अभाव और सामाजिक प्रतिबंध स्त्री लेखन में बाधक बने। राजमहलों की सीमित स्त्रियों को ही शिक्षा मिलती थी। हालांकि इस युग में स्त्रियों द्वारा सीधे साहित्य सृजन का प्रमाण नहीं मिलता, लेकिन उनके व्यक्तित्व और अनुभवों को साहित्य का विषय बनाया गया। राजपूत स्त्रियों की वीरता, प्रेम और त्याग के किस्से साहित्य में शामिल हुए। साहित्येतिहास में स्त्रियों के नाम से कोई रचना उपलब्ध नहीं है। स्त्रियों के विचार और अनुभव उस समय के पुरुष लेखकों के माध्यम से ही अभिव्यक्त हुए। स्त्री लेखन भले ही नहीं था, लेकिन उनकी उपस्थिति साहित्य की प्रेरणा और कथावस्तु के रूप में प्रमुख रही। उनका जीवन और संघर्ष साहित्यिक रचनाओं का महत्वपूर्ण हिस्सा था।

Article Publication:

Published online on: 30/12/2025

Corresponding Author:

डॉ. सुमन मौर्या
शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

Email: sumanmaurya95rkt@gmail.com

©S.S. Khanna Girls Degree College

Scan For Paper

बीज बिन्दु- *पितृसत्तात्मक समाज, वीरतापरक और श्रृंगारिक काव्य, पतिपरायण, पतिव्रता, आदर्श, नायिका भेद, सौतिया डाह, काव्य रूढ़ियाँ , ऐतिहासिकता।*

पृथ्वीराज रासो मूल रूप से वीर रस प्रधान महाकाव्य है, जिसमें शृंगार रस सहायक तत्व के रूप में कथा को प्रवाह और आकर्षण प्रदान करता है। यद्यपि यह ग्रंथ इतिहास में प्रसिद्ध वीर पुरुष पृथ्वीराज चौहान को केंद्र में रखकर रचा गया है, तथापि इसमें ऐतिहासिक यथार्थ की अपेक्षा काव्यात्मक कल्पना अधिक प्रभावशाली दिखाई देती है। उस युग के कवियों का प्रमुख उद्देश्य इतिहास का तथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत करना नहीं था, बल्कि अपने नायक राजा के पराक्रम, साहस और शौर्य का गुणगान करना था। रासो साहित्य में युद्धों के कारणों का चित्रण विशेष रूप से स्त्री-केंद्रित किया गया है। यदि किसी राजा को कोई स्त्री प्रिय हो जाती थी, तो उसके लिए स्वयंवर, प्रेम या अपहरण जैसे प्रसंगों के माध्यम से युद्ध की कथाएँ रची जाती थीं। पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज के लगभग पंद्रह विवाहों का उल्लेख मिलता है, किंतु कवि ने उन्हीं विवाहों को विस्तार से प्रस्तुत किया है जो पूर्वराग, हरण अथवा प्रेम प्रसंगों से संबंधित हैं, जैसे-संयोगिता, इच्छिनी, हंसावली, शशिव्रता, पद्मावती और इन्द्रावती। इन वर्णनों के आधार पर पृथ्वीराज को सदैव 'दक्षिण नायक' के रूप में चित्रित किया गया है, जिनका मन निरंतर नारी-सौंदर्य में आसक्त रहता है। यह भी स्वीकार्य तथ्य है कि सभी युद्ध केवल स्त्री के कारण ही नहीं होते थे। अनेक युद्ध राजनीतिक हितों, राज्य-विस्तार अथवा शौर्य-प्रदर्शन के उद्देश्य से भी लड़े जाते थे। परंतु रासो काव्य की परंपरा के अनुरूप ऐसे वास्तविक कारणों को प्रायः अनदेखा कर दिया जाता था और उनके स्थान पर किसी रूपवती स्त्री को युद्ध का कारण कल्पित कर लिया जाता था। शाहाबुद्दीन और चित्ररेखा का प्रसंग इसका उपयुक्त उदाहरण है, जहाँ शाहाबुद्दीन की आसक्ति, चित्ररेखा का पृथ्वीराज की शरण में आना और अंततः दोनों राजाओं के बीच युद्ध होना दर्शाया गया है।

इस प्रकार स्त्री को केंद्र में रखकर रचे गए युद्ध-प्रसंग उस काल के काव्य ग्रंथों की प्रमुख विशेषता बन गए। भारतीय काव्यशास्त्रीय परंपराओं और कथानक की रूढ़ियों के सहारे कवियों ने अपनी कल्पना को विस्तार

दिया। इसी परंपरा का एक अन्य उदाहरण तब देखने को मिलता है जब शिशुपाल वंशी पंचायन द्वारा यादव राजा भान पर किए गए आक्रमण का कारण हंसावली को बताया गया है। इससे स्पष्ट होता है कि पृथ्वीराज रासो में ऐतिहासिक तथ्य गौण होकर काव्यात्मक उद्देश्यों और रसात्मकता को प्रधानता दी गई है-

''हँसावति तिन नाम, हंसवत्ती गति सारी।

अपनि रूप सुन्दरी, काम करतार सु कीनी।।

मन मन्नवें विचार, रूप सिंगारस लीनी।

लक्खन वत्तीस लच्छी सहज, अति सुन्दरी सो भासु कवि।

अस्तम्भ उदें पर चक्र बिच, दिक्खिन कहु चक्रंत रवि।।''[1]

उस युग में पुरुष वीरता के पथ पर अग्रसर थे और स्त्री की स्थिति अत्यंत दयनीय हो चुकी थी। वह पुरुषों के लिए केवल भोग, विलास और मनोरंजन की वस्तु बनकर रह गई थी। युद्ध में पराजय की स्थिति में राजा को हाथी, घोड़े, बहुमूल्य रत्नों के साथ-साथ अपनी पुत्री को भी विजेता के समक्ष भेंट स्वरूप प्रस्तुत करना पड़ता था। स्त्री को एक ऐसी वस्तु समझा जाता था जिसे जीत लेने के बाद इच्छानुसार त्याग दिया जाए और फिर किसी अन्य की खोज की जाए। विजित स्त्री विजेता राजा की वीरता, शौर्य और अहंकार का प्रतीक मानी जाती थी। ''विवाह मात्र अहंकार की तुष्टि का साधन बन जाए, यह मध्यकालीन सामन्ती मानसिता की क्षयशीलता का एक प्रमुख लक्षण है।''[2] जब पृथ्वीराज संयोगिता से गंधर्व विवाह करता है और जयचन्द को युद्ध के लिए ललकारता है, तब चन्द यह संदेश देता है कि जिसे तुम अपना शत्रु समझते हो, उसी दिल्लीश्वर ने तुम्हारी पुत्री से विवाह कर लिया है और अब वह आभूषणों के बदले तुमसे युद्ध की चुनौती दे रहा है। इस प्रसंग का वर्णन पृथ्वीराज–जयचन्द युद्ध (पूर्वार्द्ध) में मिलता है।

''स ज रिपु ढिल्लियनाथ सो ध्वंसनं जग्गियं आये।

परणेवं तव पुत्री युहधं मंगति भूषनं सोइ।।''[3]

यहाँ युद्ध की माँग करना पृथ्वीराज द्वारा अपनी वीरता का प्रमाण देना है कि उसने संयोगिता का हरण नहीं किया, विजित करके लाया है।

मदना ब्राह्मणी संयोगिता को नारी-धर्म और जीवन के व्यवहारिक मूल्यों की शिक्षा देती है। वह बताती है कि अहंकार मनुष्य को सच्चे गुणों से दूर कर देता है। 'मान' ही सभी कष्टों की जड़ है और

विवाहित स्त्री के लिए यह मानो काँटे के समान पीड़ादायक होता है। अहंकार के कारण ही बीसलदेव अपनी पत्नी राजमती को बारह महीनों तक त्याग कर चला जाता है। मदना ब्राह्मणी विनय को सबसे बड़ा गुण मानती है। वह समझाती है कि मुग्धा, मध्य और प्रौढ़ा नायिकाओं के स्वभाव से पति को आकर्षित किया जा सकता है, परंतु विनय इन सभी से अधिक प्रभावशाली है। मधुर और विनम्र वाणी से पति का हृदय जीता जा सकता है। विनय ऐसा गुण है जिससे व्यक्ति दूसरों को प्रसन्न कर सकता है और अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है। वह यह भी कहती है कि विनय ही स्त्री का सच्चा आभूषण है। विनय से युक्त स्त्री को किसी बाहरी साज-सज्जा की आवश्यकता नहीं होती। संयोगिता को संबोधित करते हुए वह कहती है कि विनय के बिना की गई तपस्या व्यर्थ है। नारी को चाहिए कि वह कभी घमंड न करे, पति के सामने स्वयं को श्रेष्ठ न माने और सदैव नम्रतापूर्वक व्यवहार करे। इसी विनम्रता के माध्यम से वह अपने पति के मन में सम्मान और प्रेम का स्थान प्राप्त कर सकती है।

''नमवति मान संसार गुन, मान दुक्ख को मूल।
सो परिहरि संयोग तू, मान सुहागिनी सूल।।''[4]

इसी प्रकार-

''वय चढ़त चढ़ै विनया सुबर, सब शृंगारति भार वपु।
बंभनिय भनै संजोग सुनि, विनय बिना सब आर तपु।।''[5]

इसी प्रकार-

''विनय बिना सुन्दरि अधम कंत देइ दूनौ सु दुख।
संयोगि भोग विनयौ बड़ौ, लहै विनय मंगल सु सुख।।''[6]

सुहागिन स्त्री के आचरण और व्यवहार के बारे में भी शिक्षा दी गई है-

''सो ती अह रस हाऔ, उच्चसि, या कील कंताई।
सो तिय अग्ग सुहाई, दिसअसि नीरसं नायं।।''[7]

शुक-वर्णन से संयोगिता के चरित्र की दृढ़ता स्पष्ट होती है। वह पूर्ण रूप से पति-परायण और पतिव्रता है। उसके हृदय में केवल एक ही इच्छा है कि वह पृथ्वीराज को ही अपना पति बनाए। वह कहती है कि जीवन रहते हुए वह केवल सांभर नाथ को ही अपने पति के रूप में स्वीकार करेगी। यदि उसका विवाह

पृथ्वीराज से नहीं होता, तो वह अविवाहित रहते हुए ही अपने प्राण त्याग देना उचित समझेगी। इसके अतिरिक्त उसके मन में किसी अन्य पुरुष को पति बनाने की कोई कामना नहीं है-

''मन अभिलाख सु राज, वरन सुन्दरी भइ मति।
जौ तन मध्यै सास, मोहि संभरिय नाथ पति।।
कै कुआरंपन मरों, धरौं अंग पहुमि पर।''[8]

'संयागिता के पूर्वजन्म' की कथा एक गहरी विडंबना को उजागर करती है। जिस पिता के लिए उसकी पुत्री उसकी आँखों की पुतली समान होती है, जिसे वह एक क्षण के लिए भी अपनी दृष्टि से दूर नहीं देख सकता, वही पुत्री आगे चलकर अपने पिता और पति दोनों के विनाश का कारण ठहरा दी जाती है। यह कथा केवल पौराणिक प्रसंग नहीं है, बल्कि उस सामाजिक सोच का प्रतिबिंब है जिसमें स्त्री को सहज ही दोषी मान लिया जाता है। जब किसी विवाद में पुरुष और स्त्री आमने-सामने होते हैं, तब सत्य की खोज करने के स्थान पर समाज प्रायः स्त्री को ही अपराधी घोषित कर देता है, चाहे उसकी कोई भूल न भी हो। यही अन्याय रम्भा के साथ भी घटित होता है। सुमंत मुनि के चित्त के विचलित होने पर क्रोधित जरज ऋषि रम्भा को शाप देते हैं कि वह मृत्यु लोक में 'कलह-प्रिया' के नाम से जन्म लेगी। उसे यह दंड दिया जाता है कि स्त्री रूप में वह कभी सुख का अनुभव नहीं कर पाएगी और अपने पिता व पति के बीच विनाशकारी कलह का कारण बनेगी। उसका जन्म कमधज जयचन्द के यहाँ जन्हाई के गर्भ से निश्चित कर दिया जाता है। परंतु इस कथा का सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि सुमंत मुनि के असंयम का उत्तरदायित्व किसका है? अपने मन पर नियंत्रण न रख पाने के बावजूद मुनि पर कोई आक्षेप नहीं आता, कोई शाप नहीं दिया जाता। समस्त दोष केवल रम्भा पर आरोपित कर दिया जाता है। इस प्रकार एक स्त्री को न केवल शापित किया जाता है, बल्कि उसे कुल-नाशिनी के रूप में प्रस्तुत कर समाज के न्याय को एकतरफा बना दिया जाता है-

''एम छल्यौ प्रयवार, रोस करि श्राप आप दिय।
मृत्युलोक अवतार, नाम तुअ कलह-प्रिया किय।
इन अवधू मन छल्यौ, सुक्ख नन लहदि त्रीय तन।
पित पति कुल संहरहि, पीय तो हथ्थ रहै जिन।
जीचंदराइ कमधज्ज कुल, उअर जुन्हाइय पुत्र-छल।।''[9]

उस समय स्त्रियों को अपने जीवनसाथी के चयन की स्वतंत्रता प्राप्त थी। विवाह के लिए स्वयंवर जैसी परंपराएँ प्रचलित थीं, जिनमें स्त्री को यह अधिकार होता था कि वह अपनी इच्छा से वर का चयन करे। 'जंगम-कथा' काल में संयोगिता के स्वयंवर की कथा इसी परंपरा को दर्शाती है। राजा जयचन्द स्वयंवर के लिए अनेक राजाओं को आमंत्रित करता है, किंतु पृथ्वीराज चौहान को आमंत्रण नहीं भेजता। अपमान की भावना से प्रेरित होकर वह स्वयंवर मंडप के द्वार पर पृथ्वीराज की प्रतिमा स्थापित करवा देता है। स्वयंवर के अवसर पर कविराज संयोगिता को एक-एक कर सभी उपस्थित राजाओं का परिचय कराते हैं। अंत में द्वार पर रखी गई उस प्रतिमा का परिचय देते हुए वे बताते हैं कि यह चौहान वंश के राजा सोमेश्वर के पुत्र पृथ्वीराज की प्रतिमा है। संयोगिता अपने पूर्व में दिए गए गंधर्व-वचनों को स्मरण करते हुए पृथ्वीराज की प्रतिमा को ही वरमाला पहना देती है। यह देखकर जयचन्द क्रोधित हो उठता है और कविराज को पुनः सभी राजाओं का परिचय कराने का आदेश देता है। किंतु दूसरी बार भी संयोगिता वही करती है। वह पृथ्वीराज की प्रतिमा को ही माला पहनाती है। यह क्रम दोहराया जाता है, पर प्रत्येक बार संयोगिता का निर्णय वही रहता है। संयोगिता के इस अडिग निर्णय से जयचन्द अत्यंत क्रुद्ध हो जाता है और उसे अपने से दूर, गंगा किनारे स्थित महल में भेज देता है। यद्यपि उस समय स्त्रियों को वर-चयन की स्वतंत्रता प्राप्त थी, फिर भी परिवार या समाज की स्वीकृति मिलना आवश्यक नहीं माना जाता था। ऐसी परिस्थितियों में स्त्रियाँ गंधर्व विवाह का मार्ग अपनाती थीं। पद्मावती, संयोगिता और शशिव्रता द्वारा पृथ्वीराज से किया गया गंधर्व विवाह इसका उदाहरण है। उस युग में राजाओं के एक से अधिक विवाह सामान्य माने जाते थे। जिस स्त्री से उन्हें अनुराग होता, उससे विवाह कर लिया जाता था। कई बार राजकुमारियाँ किसी राजा को प्रत्यक्ष रूप से देखे बिना ही उसके शौर्य, पराक्रम और कीर्ति की प्रशंसा सुनकर उसके प्रति आकर्षित हो जाती थीं और उसे ही अपना जीवनसाथी स्वीकार कर लेती थीं-

''आवलि पंग नरेस, देस मंडे सुवेस वर।
वरन कज्ज चौसर विचार, संजोग दीन कर।।
देव नाथ-कवि अग्ग, वरनि नृप देश जातिगुन
फुनि संजोग, कनक विग्रह सु द्वार उन।।
पहुआन राव सोमेश्वर सुअ, पृथीराज सुनि नाम बर

गंध्रत्व वचन विच्चारि उर, धरि चौसर प्रथिराज गर।।''[10]

इसी प्रकार-

''बहुरि नाम गुन जाति, देसपति प्रपित विरद वर।
लै लै नाम पराम, देव जानी स देव कर।।
फुनि चहुआन सु पास, जाय ठडएसे भये जामं।
कछुक विरहिय राज, कछुक जेपै गुन तामं।।
नृप लज्ज पंग ग्रह भट्ट पर, कुछ संखेप सु उच्चरयौ।।
संजोगि समझ्झे उर वरह, कंड प्रत्यु, चौसर धरयौ।।''[11]

विवाह के पश्चात जब पृथ्वीराज युद्ध के लिए संयोगिता को छोड़कर जाने की तैयारी करता है, तब संयोगिता के मन में गहन द्वंद्व उत्पन्न हो जाता है। वह समझ नहीं पाती कि क्या करे। यदि वह अपने प्रिय को रोकती है, तो उसके शौर्य और विजय के मार्ग में बाधा बन जाएगी; और यदि उसे जाने देती है, तो विरह की पीड़ा से उसका हृदय व्याकुल हो उठता है। मात्र बिछुड़ने की कल्पना ही उसके मन को अशांत कर देती है। इस मानसिक संघर्ष की घड़ी में संयोगिता अपने मन को संयम में रखती है और अपने व्यक्तिगत दुःख को पीछे छोड़कर अपने पति के कर्तव्य को प्राथमिकता देती है। अंततः वह अपने हृदय की वेदना को छिपाते हुए पृथ्वीराज की विजय की कामना करती है और उसे युद्ध के लिए विदा कर देती है। ऐसी परिस्थितियों में स्त्रियाँ अपने भावनात्मक दुख को त्यागकर धैर्य और त्याग का परिचय देती हैं-

''जौ जंपो तो जित्त हर, अनंजपै विहस्त।''[12]

वीर क्षत्राणियों के लिए अपने पति या पुत्र का युद्धभूमि से कायरता दिखाकर लौट आना अत्यंत पीड़ादायक होता है। उन्हें इस बात से प्रसन्नता नहीं होती कि उनका प्रियजन सुरक्षित उनके पास लौट आया है, क्योंकि उनके लिए सम्मान और वीरता जीवन से भी अधिक मूल्यवान होते हैं। वे अपने स्वजन के हृदय में पराजय नहीं, बल्कि विजय की ज्वाला प्रज्वलित करती हैं और उनमें ऐसा उत्साह भरती हैं कि वे या तो रणभूमि से विजयी होकर लौटें अथवा वहीं वीरगति को प्राप्त हों।

इस प्रसंग में स्त्री का रूप केवल कोमलता और सहनशीलता तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसका साहसी और प्रेरणादायक स्वरूप भी उभरकर सामने आता है। युद्ध के दौरान जब यवन सैनिक

रणभूमि से पलायन करने लगते हैं, तब उनकी पत्नियाँ शहाबुद्दीन के समक्ष जाकर उत्साह और वीरता से परिपूर्ण वचन कहती हैं। उनके शब्द सैनिकों के मन में पुनः साहस भर देते हैं और उनमें युद्ध में लौटकर संघर्ष करने का दृढ़ संकल्प उत्पन्न कर देते हैं-

''ओ गोरी सुरतान साहिब बरं, साहाब साहाबनं।

जैनं जीवन तस्य सेवक वृतं मानस्य मर्द्द जंग।।

बायं जाचत अर्थवीय धनयो, धनयोपि जोविधिगं।

धिगता तस्यय सेवकाय परयं, ना दीन सा मानयं।।''[13]

जहाँ एक ओर इस काव्य में नारी के विविध रूप देखने को मिलते हैं, वहीं 'कनवज' समय में पिता और पुत्री के संबंधों को भी स्पष्ट रूप से देख सकते है। चारों ओर भयावह और करुण दृश्य उपस्थित हैं। रणभूमि में शवों के ढेर लगे हुए हैं और वातावरण पूरी तरह वीभत्स हो उठा है। इस हृदयविदारक दृश्य को देखकर संयोगिता की आँखों से अश्रु अनायास ही बहने लगते हैं। उसकी इस करुण अवस्था को देखकर पंगुराज (जयचन्द) का क्रोध भी धीरे-धीरे शांत पड़ जाता है-

''दुअ धरिय मोह मारूत बज्यौ, करुण-अंभ बख्यौ निमुखा।

तिरि गत्त राज तामस बुझ्झौ, दिखिय पंग संजीगि मुख।।''[14]

कन्नौज पहुँचने पर वह कमधज्ज से आग्रह करता है कि संयोगिता का विवाह पूर्ण विधि-विधान के साथ सम्पन्न किया जाए, ठीक वैसे ही जैसे कोई पिता अपनी पुत्री के विवाह में अपनी सामर्थ्य से भी अधिक खर्च करने का प्रयास करता है। जयचन्द भी संयोगिता को असंख्य और बहुमूल्य उपहार प्रदान करता है, जिनकी गणना करना किसी गणितज्ञ के लिए भी कठिन हो। यद्यपि उस समय यह प्रेम और प्रतिष्ठा का प्रतीक माना जाता था, किंतु आज के समाज में दहेज की यही प्रथा एक गंभीर सामाजिक अभिशाप का रूप ले चुकी है-

''पुन कनवज कमधज्ज गौ, अति उर गंठिय अथ्थ।

स्याह विद्धि कन्या करौं, पिंति कन्नौजी नथ्य।।''[15]

इसी प्रकार-

''कहै चंद प्रोहित प्रति, तुम दिल्लीपुर जाहु।

विधि विचित्र संजोगि को, करौ देव विधि ब्याहु।।''[16]

इसी प्रकार-

''नग अनेक विधि बिधि विचित्र, विवणि गनै को गेउ।

बिजै करत विजपाल निज, लिय सु दस्त दिवि जेऊ।।''[17]

ढोला मारू रा दूहा' की भाँति इस प्रसंग में भी सौतियाडाह और ईर्ष्या की भावना का चित्रण मिलता है। पृथ्वीराज जब संयोगिता के प्रेम में इतना डूब जाता है कि अपनी अन्य रानियों की ओर ध्यान देना छोड़ देता है, तब उनके मन में संयोगिता के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है। इस जलन से प्रेरित होकर इच्छिनी एक तोते को भेजती है, ताकि वह जाकर राजा की स्थिति और गतिविधियों की सूचना लेकर आए-

''सुक्ख दुक्ख इच्छिनी सु दुज, मन मंडिय सुनि कान।

मो सेवा तैं बहुत किय, करो खबरि चहुआ।।''[18]

एक स्त्री आवश्यकता पड़ने पर अपना सर्वस्व अर्पित कर सकती है। धन-दौलत, रत्न, मोती, स्वर्ण, वस्त्र या यहाँ तक कि शस्त्रों का दान करते समय उसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता। किंतु पति का प्रेम और उसका सान्निध्य वह किसी के साथ साझा नहीं कर सकती। अपने जीवनसाथी के सुख और प्रेम पर उसका अधिकार केवल उसी के लिए होता है, जिसे वह किसी अन्य के साथ बाँटने की कल्पना भी नहीं कर पाती-

''धन ग्रह बंटन मुत्ति नग, हेम पटबंर सार।

पुनि त्रिय प्रिय बंटन सुरति, लगै अधिक खब धार।।''[19]

जिस रानी को राणा का विशेष स्नेह और प्रेम प्राप्त होता है, उसके मन में अहंकार का भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक माना जाता है। वह स्वयं को अन्य सभी से श्रेष्ठ और अपने भाग्य को अत्यंत सौभाग्यशाली समझने लगती है। यही कारण है कि संयोगिता भी अपनी सौतों को अपने सुख, वैभव और आनंद का प्रदर्शन करने के लिए अपने महल में आमंत्रित करती है और स्वयं को उनसे उच्च मानने लगती है। इस प्रकार उसके भीतर अपने स्थान और सौभाग्य को लेकर गर्व की भावना जन्म ले लेती है-

''एक दिवस संजोगि ग्रह, महमानिय सक्सौति।

आनि सुक्ख प्रगटन मच्छर, अधिक सवतनी होति।।''[20]

उन सभी के बीच यह प्रतिस्पर्धा आरंभ हो जाती है कि कौन अधिक श्रेष्ठ है और राजा की दृष्टि में किसका स्थान ऊँचा है। एक-दूसरे से आगे निकलने और स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की चाह में वे अनावश्यक ईर्ष्या और द्वेष को अपने मन में स्थान दे देती हैं।

चन्दबरदाई ने अपने काव्यग्रंथ में संयोग और वियोग दोनों पक्षों को पूर्णता प्रदान करने के उद्देश्य से नायिका के चार रूपों का निरूपण किया है—पद्मिनी, हस्तिनी, चित्रिणी और शंखिनी। इनमें पद्मिनी को उन्होंने सर्वश्रेष्ठ नायिका के रूप में प्रतिष्ठित किया है, जबकि शंखिनी को निंदनीय माना है। इस वर्गीकरण के माध्यम से कवि ने नायिका के स्वभाव, गुण और आचरण की विविधताओं को रेखांकित किया है।

कथा के अंत में जब पृथ्वीराज का निधन होता है, तब संयोगिता सहित सभी रानियों का जीवन भी एक अत्यंत करुण मोड़ पर पहुँच जाता है। अपने पति से अंतिम मिलन की आकांक्षा और गहन वियोग की पीड़ा के साथ उनका अंत चित्रित किया गया है। यह प्रसंग इतना मार्मिक और हृदयविदारक है कि पाठक के मन को भीतर तक स्पर्श करता है और कथा को गहन भावात्मक ऊँचाई प्रदान करता है।

''प्रथा सथ्य सह गवनि, खनि सज्जिय सु राज दह।

सधन कुसुम सुर वास, सिलिप मुख गुंज मुंज तहा।

× × ×

धनि धन्य सद्द आयास हुअ, लखि कोतिग अनभूत भुद।।''[21]

इस सम्पूर्ण काव्य में सती प्रथा का उल्लेख दो अवसरों पर मिलता है। पहला वर्णन काव्य के अंत में आता है, जबकि दूसरा प्रसंग कैमास के वध के समय प्रस्तुत किया गया है। इन दोनों प्रसंगों के माध्यम से उस युग की सामाजिक मान्यताओं और परंपराओं का चित्रण किया गया है-

''रक्खि सरनि सह गवनि, मरन मंगल अपुत्वकिय।

दरनि पिक्ख दरवान, रूक्कि सक्यउ न मग्गुदिय।।''[22]

अतः यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराज रासो में स्त्री पात्रों का चित्रण प्रतीकात्मक और सीमित है। वे पतिव्रता, आदर्श नारी, मर्यादाप्रेमी और नायक के लिए प्रेरणा स्रोत के रूप में प्रस्तुत की गई हैं, लेकिन स्वतंत्र और स्वायत्त व्यक्तित्व के रूप में उनका कोई वास्तविक विकास नहीं दिखता। यह स्पष्ट रूप से तत्कालीन सामंती और पितृसत्तात्मक समाज की मानसिकता को दर्शाता है, जहाँ स्त्री का मूल्य उसके पुरुष पर प्रभाव और

उसकी सेवा में ही मापा जाता था। काव्य में स्त्री पात्रों के सामाजिक या मनोवैज्ञानिक आयाम का गहन विवेचन नहीं मिलता। उनका अस्तित्व प्रायः शृंगार और विरह रस तक सीमित रहता है। यद्यपि भावनात्मक गहराई दिखाई देती है, लेकिन यह व्यक्तिगत अनुभव या व्यापक सामाजिक जीवन का सटीक प्रतिबिंब नहीं है। इस दृष्टि से कहा जा सकता है कि रासो में स्त्री केवल पुरुष केन्द्रित दृष्टिकोण की पूरक और प्रतीक के रूप में ही दिखाई देती है, न कि अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व और समाज में वास्तविक भूमिका के रूप में।

संदर्भ सूची:

1. कविराज मोहन सिंह- पृथ्वीराज रासौ, इंस्टिट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज, साहित्य संस्थान, उदयपुर, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 27
2. शान्ता सिंह- चन्दबरदाई, साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली, पुनर्मुद्रण : 2012, 2017 एवं 2019, पृष्ठ 67
3. माताप्रसाद गुप्त- पृथ्वीराज रासउ, साहित्य ज्ञान, चिरगाँव, झांसी, प्रथमवार संवत् 2020 वि., पृष्ठ 169
4. वही, पृष्ठ 246, खण्ड 3
5. वही, पृष्ठ 247, खण्ड 3
6. वही, पृष्ठ 249, खण्ड 3
7. वही, पृष्ठ 216, खण्ड 3
8. वही, पृष्ठ 265, खण्ड 3
9. वही, पृष्ठ 302, खण्ड 3
10. वही, पृष्ठ 304, खण्ड 3
11. वही, पृष्ठ 305, खण्ड 3
12. वही, पृष्ठ 130, खण्ड 4
13. कविराज मोहन सिंह- पृथ्वीराज रासौ, इंस्टिट्यूट ऑफ राजस्थान स्टडीज, साहित्य संस्थान, उदयपुर, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 40
14. वही, पृष्ठ 291, खण्ड 4
15. वही, पृष्ठ 295, खण्ड 4
16. वही, पृष्ठ 295, खण्ड 4
17. वही, पृष्ठ 301, खण्ड 4
18. वही, पृष्ठ 301, खण्ड 4
19. वही, पृष्ठ 303, खण्ड 4
20. वही, पृष्ठ 303, खण्ड 4
21. वही, पृष्ठ 30, खण्ड 4
22. वही, पृष्ठ 456, खण्ड 3